५
नयी कहानी की पहली कृति : परिन्दे

फ़कत सात कहानियों का संग्रह 'परिन्दे' निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम 'नयी कहानी' कहना चाहते हैं उसकी भी पहली कृति है। पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियाँ उसी भाषा की हैं जिसमें अभी तक शहर, गाँव, कस्बा और तिकोने प्रेम को ही लेकर कहानीकार जूझ रहे हैं। 'परिन्दे' से यह शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा-साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल पर ही 'मार्कटाइम' कर रहा है। समकालीनों में निर्मल पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है—बल्कि छोड़ा है; और आज के मनुष्य की गहन आन्तरिक समस्या को उठाया है।

व्यक्ति-चरित्र वही है, जीवन-स्थितियाँ भी रोज की जानी-पहचानी ही हैं, लेकिन निर्मल के हाथों वही स्थितियाँ इतिहास की विराट नियति बन कर खड़ी हो जाती हैं और उनके सम्मुख खड़ा व्यक्ति सहसा अपने को असाधारण रूप से अकेला पाता है और उसकी जबान से निकला हुआ मामूली-सा वाक्य एक युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।

पहाड़ के पीछे से आते हुए पक्षियों के झुंड को देखकर 'परिन्दे' की लतिका चलते-चलते सोचती है : "क्या वे सब प्रतीक्षा कर रहे हैं? लेकिन कहाँ के लिए, हम कहाँ जायेंगे ?" प्रश्न मामूली है लेकिन कहानी के माहौल में वह सिर्फ पक्षियों का या लतिका का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं रह जाता। जैसे इस प्रश्न से लतिका, डाक्टर मुखर्जी, मि० ह्यूबर्ट सबका सम्बन्ध है—इन सबका और इनके अलावा भी और सबका। देखते-देखते प्रेम की एक कहानी मानव-नियति की व्यापक कहानी बन जाती है और एक छोटा-सा वाक्य पूरी कहानी को दूरगामी अर्थवृत्तों से वलयित कर देता है। हम कहाँ जायेंगे यह वाक्य सारी कहानी पर अर्थ-गंभीर विषाद की तरह छाया रहता है। प्रसंगात् चेखव की कहानियों में बार-बार गूंजने वाला वह प्रश्न याद आ जाता है—हम क्या

करें! वह प्रश्न जिसकी गूँज उन्नीसवीं सदी के सारे रूसी कथा-साहित्य और सामाजिक चिंतन में बार-बार सुनाई पड़ती है। जैसे सारा जमाना एक साथ पूछ रहा हो कि क्या करें?

इसी प्रकार 'सितम्बर की एक शाम' का बेकार नवयुवक घास पर लेटे हुए जब सोचता है कि "सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह "उसे अर्थ दे" तो उससे साधारण बेकारी से कहीं बड़ा अर्थ ध्वनित होता है। "उसने आँखें उठायीं—सारी दुनिया उसके सामने पड़ी थी और उसकी उम्र सत्ताईस वर्ष की थी।" यह एक वाक्य बहुत कुछ कह देता है; एक वाक्य में आज का सारा अन्तर्विरोध झलक उठता है। संभावना और व्यर्थता का अन्तर्विरोध! बेकारी पर लिखी हुई दर्जनों कहानियाँ एक ओर और 'सितम्बर की एक शाम' एक ओर! 'माया का मर्म' की बेरोजगारी भी इसी प्रकार जिन्दगी की व्यापक निरर्थकता को व्यंजित करती है जिसे आलबेयर कामू 'ऐबसर्ड' कहता है।

स्वतंत्रता या मुक्ति का प्रश्न, जो समकालीन विश्व-साहित्य का मुख्य प्रश्न बन चला है, निर्मल की कहानियों में प्रायः अलग-अलग कोण से उठाया गया है। एक तरफ से देखा जाय तो 'परिन्दे' की लतिका की समस्या स्वतंत्रता या मुक्ति की समस्या है! अतीत से मुक्ति, स्मृति से मुक्ति, उस चीज से मुक्ति 'जो हमें चलाए चलती है और अपने रेले में हमें घसीट ले जाती है।' इन कहानियों के प्रायः सभी व्यक्ति-चरित्र अपने अतीत की स्मृति से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हैं। सारी कहानियाँ इस मुक्ति की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना हैं। सर्वत्र कोशिश यही है कि इतिहास से अपने को मुक्त करके एक साक्षी या 'विटनेस' के रूप में उसे देखा जाय। मुक्ति का यह क्षण जिसमें मनुष्य स्वयं अपना साक्षी हो जाता है, निर्मल की अनेक कहानियों का आलोककेन्द्र है। और उस क्षण के आलोक में ही व्यक्ति देखता है कि "वह मुक्त है और सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा कर रही है।" इस प्रकार ये कहानियाँ जीवन की विभिन्न स्थितियों के सन्दर्भ में आज के सबसे बड़े मानव-मूल्य—मानव-मुक्ति—को परिभाषित करती है।

यह आकस्मिक नहीं है कि कहानी के माध्यम से मानव-मुक्ति का प्रश्न उठाने के साथ ही निर्मल ने अपनी कहानियों को भी हिन्दी कहानी की परिपाटी से मुक्त करने का प्रयत्न किया है। सच्ची रचना वहीं शुरू होती है जब लेखक अपनी स्मृति को जीवन-सम्बन्धी प्रचलित 'साहित्यिक' यथार्थ से मुक्त कर लेता है। जैसा कि एक निबन्ध में निर्मल ने स्वयं कहा है, "ऐसे ही शून्य से कला का जन्म होता है।" विरासत में मिले 'फार्मूलों' से मुक्त होकर जब कोई

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

लेखक सीधे जीवन का साक्षात्कार करता है और जिन्दगी की जटिलताओं से प्रवेश करके सच्चाई का पता लगाता तभी नवीन कलाकृति का सृजन संभव होता है। 'तीसरा गवाह' कहानी जैसे इसी सृजन-सिद्धान्त को उदाहृत करने के लिए कही गई है।

प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में एक वकील साहब अपनी 'घिसी-पिटी' धारणाएँ प्रकट करते हैं तो रोहतगी साहब बहुत ही धीमे स्वर में कहते हैं कि "हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं, वकील साहब ! सच्ची बात उस लड़की के अलावा कोई नहीं जान सकेगा और मुझे सन्देह है कि क्या वह खुद भी सही कारण जान पाएगी ?" इस कथन के पीछे जीवन की जटिलता की ओर कितना संजीदा संकेत है; इसका ठीक-ठीक अहसास उस समय होता है जब हम बड़े-बड़े लोगों को हर मसले पर दनादन राय देते हुए देखते हैं। 'तीसरा गवाह' कहानी इस बात को जैसे साबित करने के लिए लिखी गई है कि स्वयं अपने ही जीवन में घटी हुई घटना भी कितनी जटिल होती है कि कभी-कभी स्वयं हमारे लिए ही उसे ठीक ठीक समझना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार यह कहानी वास्तविकता के प्रति एक नये दृष्टिकोण की ओर संकेत करती है जिसे चाहें तो 'नई कहानी' की शुरुआत भी कह सकते हैं। हर घटना अनेक व्याख्याओं के लिए खुली हुई है और समस्त व्याख्याओं के बावजूद वह घटना समाप्त नहीं हो जाती—यह भावबोध हिन्दी कहानी में एक नये मोड़ की सूचना देता है।

अभी तक जो कहानी सिर्फ कथा कहती थी या कोई चरित्र पेश करती थी अथवा एक विचार का झटका देती थी, वही निर्मल के हाथों जीवन के प्रति एक नया भावबोध जगाती है; साथ ही ऐसे दुर्लभ अनुभूति-चित्र प्रदान करती है जिन्हें हम कम-से-कम हिन्दी में कहानी के माध्यम से प्राप्त करने के अभ्यस्त नहीं थे।

जाहिर है कि एक नये गद्य के बिना कहानी के क्षेत्र में इस प्रकार के नवीन प्रयत्न असम्भव थे। इन कहानियों को पढ़ते समय एक नये गद्य से परिचय होता है—अपने प्रयोजन के लिए बनाया हुआ लेखक का अपना गद्य ! सम्भवतः कहानी का गद्य इतना संवेदनशील तो पहले कभी न था। या तो भावोच्छ्वसित गद्य काव्य था या नितान्त कामकाजी ! 'परिन्दे' को देखकर लगता है कि भाषा के क्षेत्र में जो काम इतने दिन में प्रयोगशील नयी कविता भी न कर सकी उसे अन्ततः कहानी के गद्य ने कर दिखाया। छोटे-छोटे संवादों

में उभारी हुई 'पिक्चर पोस्टकार्ड' कहानी संभवतः इस गद्य के निखरे हुए आधुनिकतम रूप को प्रकट करती है।

कुल मिलाकर इस संग्रह की कहानियाँ कहानी के एक परम्परासिद्ध ढाँचे में अनेक नई संभावनाओं का संकेत देती हैं। अभी तो यह एक शुरुआत है ! लेकिन एक संभावनापूर्ण शुरुआत।

२

कहानी-संग्रह 'परिन्दे' का प्रकाशन अब हुआ है, लेकिन निर्मल वर्मा की कहानियों की चर्चा एक अरसे से हो रही है। प्रायः सभी मानते हैं कि उनकी कहानियाँ गहरा प्रभाव डालती हैं। लेकिन ऐसा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कला का विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ है, भावुकता, निराशा एकरसता वगैरह की शिकायत अलबत्ता की गई है। बेहतर है शुरुआत इस प्रभाव के विश्लेषण से ही हो।

यह सही है कि निर्मल की कहानियाँ गहरा प्रभाव छोड़ जाती हैं यहाँ तक कि तमाम कहानियाँ लगभग एक-सा प्रभाव छोड़ती हैं और यह भी सही है कि इस प्रभाव के आगे न चरित्र याद रहते हैं और न घटनाएँ। लेकिन सवाल यह है कि क्या इनका याद रहना जरूरी है ? पाठक के लिए जरूरी क्या है : प्रभाव या चरित्र आदि ? जिन कहानियों के चरित्र आदि याद रह जाते हैं क्या वे भी ऐसा ही प्रभाव डालती हैं ? क्या यह सही नहीं है कि जिन कहानियों में विविधता के नाम पर ढूँढ़-ढूँढ़ के अजीबो-गरीब चरित्र लाए जा रहे हैं और अछूते जीवन-खंड पेश किए जा रहे हैं वे प्रभाव के नाम पर या तो शून्य हैं या फिर केवल विस्मय जगा कर ही रह जाती हैं ? जाहिर है कि ये कहानीकार कहानी के प्रभाव की जगह सिर्फ अपना प्रभाव पैदा करना चाहते हैं।

चरित्र वहीं याद आते हैं जहाँ भाव कमजोर होता है और शिल्प प्रबल, दूसरे शब्दों में, जहाँ कहानी के ढाँचे में दरार रहती है। और साफ है कि ऐसी दरारोंवाली कहानी अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। अचंभा तो इस बात का है कि जीवन-विविधता की इस दौड़-धूप में कहानीकारों के हाथ से यह परम्परागत बुनियादी सिद्धान्त भी छूटता जा रहा है कि कहानी का लक्ष्य 'प्रभावान्विति' है, चरित्र, कथानक आदि तो उसके साधन हैं।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

निर्मल की कहानियों में प्रभाव की गहराई इसीलिए है कि उनके यहां
चरित्र, वातावरण, कथानक आदि का कलात्मक रचाव है। कलात्मक रचाव
स्वयं रूप के विविध तत्वों के अन्तर्गत फिर वस्तु और रूप के बाच तथा स्वयं
वस्तु के अन्तर्गत। पात्र अलग इसलिए याद नहीं आते कि वे परिस्थितियों के
अंग हैं। निर्मल के मानव-चरित्र प्राकृतिक वातावरण में किसी पौधे, वृक्ष या
बादल की तरह अंकित होते हैं गोया वे प्रकृति के ही अंग हैं। 'परिंदे' कहानी
की छोटी-छोटी स्कूली लड़कियां तथा मीडोज, झरने, झाड़ियां, फूलों, चिड़ियां
में कोई अन्तर नहीं है। नीचे वे शोर करती हुई घूम रही हैं और दूर लतिका
तक जो प्रभाव पहुँचता है उसमें झरने, चिड़ियाँ और लड़कियों के स्वर घुल-
मिल गए हैं। निसर्ग एक है जिसमें सारे भेद सहज ही मिट जाते हैं। एक हृदय
है जो तमाम चीजों को रागात्मक संबंध में जोड़ देता है। कलाकार का एक
स्पर्श है जो सारे अनमेल तत्वों को एक 'रूप' में रच देता है। 'अँधेरे में' कहानी
के कलाकार बीरेन की तरह 'आँखें हैं जिन्हें देख कर लगता है कि जिस वस्तु
पर टिक जायेंगी वह अपने आप संवर-निखर जायेगी।'

इतने अधिक तत्वों को लेकर एक प्रभाव की सृष्टि करना आसान नहीं है। हर तत्व आकर्षक है, हर आकर्षक में भटकाव है और एक भी भटकाव प्रभाव को क्षीण कर सकता है। शायद संगीत ही एक ऐसी कला है जो प्रभावान्विति की दृष्टि से कला की पराकाष्ठा है। और इसीलिए हर कलाकार की यह सबसे बड़ी आकांक्षा रही है कि उसकी कलाकृति संगीत की हद को छू ले। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चित्रकारों ने यदि चित्र-कला को अधिक से अधिक ज्यामितिक रूपाकारों में बदलने की कोशिश की तो मलार्मे में जैसे प्रतीकवादी कवियों ने भाषा की सीमा में रहते हुए भी कविता को संगीत बनाने का प्रयत्न किया। बहुत सम्भव है कि कहानी में 'प्रभावान्विति' को सबसे अधिक महत्व देने वाले एडगर एलेन पो के ध्यान में भी कहानी को प्रभाव की दृष्टि से संगीत की हद तक पहुँचा देने की ही आकांक्षा रही हो क्योंकि उसका भी कलात्मक आदर्श संगीत ही था। अपने प्रेमचन्द ने भी कहानी की उपमा ध्रुपद की तान से दी है।

बहरहाल, कहानी, प्रभाव-सृष्टि की दृष्टि से, संगीत की हद छू सकती है या नहीं मुझे नहीं मालूम; लेकिन इतना मालूम है कि निर्मल की कहानियाँ संगीत का-सा प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हैं। आकस्मिक नहीं है कि उनकी अधिकांश कहानियों में संगीत का प्रकरण आता है। 'डायरी का खेल' कहानी में चैपल के बरामदे में एक स्त्री खड़ी थी संगमर-सी सफेद, स्तब्ध, निश्चल····

जिस पर पीली, पीली-सी चाँदनी गिर रही थी—पीछे बहुत धीमे सिसकता-
सा पियानो का संगीत-स्वर बहता सा आ रहा था। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' कहानी
में परेश धीरे-धीरे 'बुक-केस' के पास आया और कुछ देर तक उसके सामने
खड़ा रहा। फिर उसने चाबी डालकर धीरे से बटन दबाया। रिकार्ड धीरे-
धीरे ऊपर उठने लगा। बुक-केस के भीतर सितार-सी आलाप वाली लय उठी।
'परिंदे' कहानी में तो स्वयं एक पात्र ही पियानो-वादक है मि० ह्यूबर्ट।
''उसी क्षण पियानो पर शोपां का नाक्टर्न ह्यूबर्ट की उँगलियों से निक-
लता हुआ धीरे-धीरे छत के अँधेरे में घुलने लगा—मानो जल पर कोमल
स्वप्निल उर्मियाँ भँवरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर किनारों तक
फैलती जा रही हों। लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों
से परिन्दों के झुंड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं।

निर्मल ने संगीत का चित्रण, केवल चित्रण—वातावरण-चित्रण के लिए ही
नहीं किया है बल्कि संगत के उस रागधर्म (Harmony) को भी व्यक्त किया है
जिसके द्वारा विविध वस्तुएँ पिघल कर अपनी पृथक् सत्ता खोती हुई एक भाव-
धारा में बदल जाती हैं। 'परिंदे' की नायिका लतिका को चैपल में संगीत
सुनकर ''ऐसा लगा कि जैसे मोमबत्तियों के धूमिल आलोक में कुछ भी ठोस,
वास्तविक न रहा हो—चैपल की छत, दीवारें, डेस्क पर रखा हुआ डाक्टर का
सुघड़-सुडौल हाथ—और पियानो के सुर अतीत की धुंध को भेदते हुए स्वयं
उस धुंध का भाग बनते जा रहे हों।''

रागधर्म के अतिरिक्त निर्मल के यहां संगीत अनुभवों को अर्थ प्रदान करता है। ह्यूबर्ट को लगा, 'पियानो का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अँधेरी खोह से निकल कर बाहर फैली नीली धुंध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत-वर्ण निर्मल के लिए कहानी में केवल शोभा नहीं है बल्कि सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया ही संगीत-धर्मी है। फरवरी-मार्च '५८ की 'कृति' में 'सौंदर्य की छायाएँ' शीर्ष निबंध में ''उनका मौन पियानो के भीतर का मौन है। हर चरित्र एक छोटा-सा 'नोट' है, एक मौन-बिन्दु से दूसरे-बिन्दु तक उड़ता हुआ—प्रतीक्षारत। वे प्रतीक्षा करते हैं अँगुली के स्पर्श की, हलके से दबाव की। और इस दबाव के अनेक स्तर हैं।''

''मौन की चिरन्तन स्थिति' से अमूर्त लय को बाहर निकालने के लिए 'अँगुली का दबाव' निर्मल के अनुसार, कहानीकार की रचना-प्रक्रिया का पहला

कर्तव्य है। कहना न होगा कि इस दबाव के द्वारा उन्होंने कहानी के रूप में एक 'पाग' की 'रचना' की है जिसमें कहानी के सभी तत्त्व एक-रस होकर एक अन्वित प्रभाव की सृष्टि करते हैं। सम्भवतः यह वही विशेषता है जिसे इर्विंग होवे 'स्टोरी टोन' कहते हैं; दर्जनों कहानियाँ लिखने के बाद भी आज के बहुत से कहानीकार जिस 'टोन' को प्राप्त नहीं कर सके हैं, निर्मल ने उसे उपलब्ध करके अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता प्रतिष्ठित कर दी है।

अब सवाल यह है कि यह प्रभाव क्या है, कैसा है, इसका रूप क्या है, इससे क्या भाव उत्पन्न होता है?

जैसा कि कुछ लोगों का कहना है, उनके मन में भावुकता उत्पन्न होती है। भावुक व्यक्ति किसी भी प्रभाव से भावुक हो सकते हैं। लेकिन इसका निर्णय कैसे हो कि भावुकता निर्मल की कहानियों में है या इन पाठकों में? प्रभाव चाहे जिसका हो लेकिन स्वयं कहानी नहीं हो सकता। यदि यह सच है तो यह भी उतना ही सच है कि अपने प्रभाव के अलावा कहानी को ग्रहण करने का दूसरा कोई साधन भी नहीं है। निर्णय स्वयं कहानी के हाथ है क्योंकि वह केवल प्रभावित ही नहीं करती, बल्कि विशेष रूप में प्रभावित करना चाहती है और उस विशेष संकेत को जो झटक पकड़ लेता है वह कहानी की आत्मा के सबसे निकट होता है, बल्कि रूपगत अन्तःसूत्रों को आपस में तुरन्त जोड़ भी लेता है और इस तरह उसके सामने कहानी के अधिक-से-अधिक करीब की प्रतिमा होती है।

निर्मल की अधिकांश कहानियाँ अतीत की स्मृति है। कहानी कहनेवाला बरसों बाद उन स्मृतियों को जैसे दुहराता है। 'डायरी का खेल' कहानी के अन्त में वाचक (नैरेटर) कहता है: "आज उस बात को बीते अनेक साल गुजर चुके हैं।" 'तीसरा गवाह' कहानी के वाचक मिस्टर रोहतगी भी बरसों बाद अपनी जवानी के दिनों की कहानी सुना रहे हैं। 'परिन्दे' की लतिका की दुखांत गाथा भी बरसों पुरानी है। स्मृति में भावुकता सम्भव है किन्तु समय का अंतराल तात्कालिकता के आवेग को काफी कम कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तात्कालिक आवेग की भावुकता को कम करने के लिए ही निर्मल समय का इतना अन्तराल दे देते हैं।

"डायरी का खेल' कहानी में वाचक कहता है: "किन्तु बिट्टो की स्मृति सेन्टीमेंटल नहीं बनाती, वह अतीत का भाग है, जो कि याद करके भुलाया जा सके। इसमें कुछ ऐसा होता है, जो न होकर भी संग-संग चलता है, जिसे याद नहीं किया जाता क्योंकि उसे वह कभी नहीं भूलता।—अतीत समय के संग

जुड़ा है, इसलिए चेतना नहीं देता, केवल कुछ क्षणों के लिए सेन्टीमेंटल बनाता है। जो चेतना देता है, वह कालातीत है।"

इसके अतिरिक्त जो कहानियाँ अतीत की स्मृति नहीं हैं, उनमें कथा कहनेवाला पात्र सम्पूर्ण घटना से बहुत कुछ असम्पृक्त है, सबका साक्षी है। 'अँधेरे में' कहानी कहनेवाला एक छोटा-सा बच्चा है जो अपनी माँ के प्रेम की दुःखद कहानी का अबोध दर्शक है।

'माया का मर्म' 'सितम्बर की एक शाम' कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें घटना एकदम तत्काल की है और वाचक भी स्वयं भोक्ता है, किन्तु इन कहानियों के नायक वर्तमान से सहसा अपने को मुक्त करके स्मृतिहीन व्यक्ति बन जाते हैं। 'माया का मर्म' के नायक के शब्द हैं: "मैंने पहली बार बेरोजगारी के इस लम्बे और उदास अर्से पर के दरिद्रता को राख को बिना दर्द के कुरेद दिया। जो अभाव की रिक्तता से अब तक चुभती थी, वह अब भी है, किन्तु जैसे वह अपनी न रहकर परायी बन गई है जिसे मैं बाहर से तटस्थ भाव से देख सकता हूँ—जिसने अब 'छुट्टी' का सहज भाव अपना लिया है।"

वह खुली हुई प्रकृति के बीच आता है और फिर प्रकृति-सी प्रसन्न एक छोटी-सी बच्ची का साथ हो जाता है और नये वातावरण में उसे महसूस होता है "मेरी उम्र कहीं बहुत पीछे छूट गई—जैसे उसका कभी मुझसे वास्ता न रहा हो।"

'सितम्बर की एक शाम' का बेरोजगार नायक भी घर से बाहर निकलते ही महसूस करता है कि "उसके पाँव पीछे कोई निशान नहीं छोड़ गए हैं—जैसे वह अभी जन्मा है। उसकी जिन्दगी की गाँठ अतीत के किसी प्रेत से नहीं जुड़ी है, इसलिए वह मुक्त है और घास पर लेटा है।"

'परिन्दे' की नायिका लतिका बेशक भावुक मालूम होती है लेकिन उसकी भावुकता को कम करने के लिए साथ-साथ दूसरा पात्र डाक्टर मुकर्जी आता है जो कहानी समाप्त होते-होते सारी भावुकता को मिटा कर दूसरा ही प्रभाव उत्पन्न कर देता है। डाक्टर स्वयं दुःखी है किन्तु अपने दुःख के प्रति अनासक्त-सा है। जिन्दगी के तजुर्बे ने उसे प्रौढ़मना बना दिया है। लतिका के बचकानेपन को वह कभी ठहाके में उड़ा देता है तो कभी ऐसे अनुभवपूर्ण वाक्यों द्वारा जो परोपदेश की रूक्षता उत्पन्न करने की जगह स्वगत-संलाप की गंभीरता पैदा करते हैं। "मरने वाले के संग खुद थोड़े ही मरा जाता है" अथवा "किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपटे रहना—यह भी गलत है।" और इस बीच अपने-आप

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

धीरे-धीरे स्वयं सतिका में भी परिवर्तन होता है "अब वैसा दर्द नहीं होता, सिर्फ उसकी याद करती हूँ, जो पहले कभी होता था।"

व्यथा की गहनता में निर्मल के पात्र प्रायः खामोश रहते हैं। उनकी खामोशी व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। उनका मौन पियानों के अन्दर का मौन है जिसकी एक-आध 'की' पर कभी-कभी लेखक की उँगली का हल्का-सा दबाव पड़ता है। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' का परेश खामोश रहता है, 'तीसरा गवाह' के मिस्टर रोहतगी भी भीड़ के बीच काफी खामोश थे, यहाँ तक कि 'अँधेरे में' का छोटा-सा लड़का भी इस रोग से ग्रस्त है, क्योंकि उसकी हमउम्र-सी एक बच्ची के अलावा, जो कभी-ही-कभी आती है, उससे कोई बात करनेवाला भी नहीं है।

इस अनासक्ति और ऐसी तटस्थता के निर्मल जब किसी करुण प्रसंग का चित्रण करते हैं तो भावावेग-रहित। 'डायरी का खेल' की बिट्टो चुपचाप रो रही थी किन्तु "उनका स्वर इतना सहज, इतना शान्त था कि कितनी ही देर तक मैं जान भी न सका कि बिट्टो रो रही है, अपने ही में धीमे-धीमे..... आँसू जो बिलकुल ठंडे, वंचनारहित होते हैं, जिनको बहाने से रोना नहीं होता, दुःख से छुटकारा नहीं मिलता, जो हृदय को एक मर्मान्तिक, घनीभूत पीड़ा में निचोड़ते हुए चुपचाप बूँद-बूँद गिरते हैं—"

इस प्रकार निर्मल की यह 'आत्मीयता' है "जो मानो हमें भिगोकर खुद सूखी रह जाती है।" उन्होंने जो बात बिट्टो के लिए कही है, वह उनके लिए भी लागू करते कही जा सकती है : "आइने की तरह उनके चेहरे पर वह सब कोई देख लेते, जो देखना चाहते हैं किन्तु उन्हें कोई नहीं देख पाता।"

इस सन्दर्भ में १९१६ ई० में प्रमथ चौधरी को शरत्चन्द्र द्वारा लिखे गये एक पत्र का यह अंश बहुत उद्धृत करने योग्य है—

"कोई-कोई अत्यन्त गम्भीर स्वभाव के लोग जैसे अपने दुःख को भी कहने के समय एक ऐसे ताच्छिल्य का पुट देते हैं कि अचानक लगता है कि वह किसी और के दुःख की कहानी कह रहे हैं। मानो, इससे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप भी ठीक उसी तरह कहते हैं। घुमा-फिराकर कातरोक्ति कहीं भी नहीं है—पर जीवन की न जाने कितनी बड़ी ट्रेजेडी पाठकों के दिल पर चोट करती है। आपकी रचना की यह सहज शांत मंजी हुई लिखने की भंगिमा ही मुझे सबसे अधिक मुग्ध करती है।"

भावुकता का निर्णय पाठकों के अपने-अपने मानसिक प्रभावों से नहीं होता। विचारणीय यह है कि स्वयं कृति में भावुकता है या नहीं, लेखक में कलागत

संयम कितना है? भावात्मक संयम और कलात्मक संगति दोनों पर्याय हैं और जहाँ प्रभाव की गहराई है वहाँ इनका होना निश्चित है।

यह कला-संयम है जिसके द्वारा जीवन की दुःखान्त स्थिति को भी निर्मल जिजीविषा और आशा से अनुप्राणित कर देते हैं। बिट्टो नर्वदिक की मरीज है, उसे मृत्यु का भय बराबर बना रहता है। उसका मृत्यु-भय इस हद तक पहुँच गया है कि भय से अधिक जिजीविषा प्रकट होती है। ट्रेन में उसे नींद नहीं आती क्योंकि डर है कि सोते में कहीं ट्रेन उलट न जाय और "मरने से पहले सोते रहना कैसा अजीब है?" गोया मृत्यु को आना ही है तो आँख खोल के उसका सामना किया जाय। उसकी साध दुल्हन बनने की है लेकिन वह जानती है कि इस बीमारी के रहते वह कभी पूरी न होगी। एक दिन वह आह्लाद के-से स्वर में बब्बू से कहती है : "मरने से पहले बहुत जी भरकर जीना चाहिए, बब्बू! जैसे हम पहली बार जी रहे हों, जैसे हमसे पहले कोई न जिया हो।"

जीवन की यह लालसा एक ओर मृत्यु की भयंकरता को उग्र करती है तो दूसरी ओर अज्ञेय जीवनशक्ति का भी आभास दिलाती है। इसी प्रकार घोर से घोर निराशा की स्थिति में भी निर्मल स्थिति का अतिक्रमण करने का प्रयत्न करते हैं। "माया का मर्म" का नायक बेरोजगार है, बेकारी ने उसके अस्तित्व इतनी गहराई तक प्रभावित किया है कि उसके लिए "मेरा सोचना मेरे जैसा ही बेकार है।" उसी नवयुवक की जीवन-दृष्टि को एक छोटी-सी घटना बदल देती है। वर्षा की शाम। कागज की नाव लिए एक छोटी-सी बच्ची मिलती है। साथ हो जाता है। बातें चल निकलती हैं गँदले पानी का नाला है। बच्ची उसी में अपनी नाव डाल देती है और इस आशा से देखती है कि जैसे यह उसी लोक को जा रही है जिसका वर्णन उसने जीजी से कहानी में सुना था। घटना बीत गई। बेकार वह इसके बाद भी रहा। लेकिन 'एम्प्लायमेंट दफ्तर' जाने की आदत छूट गई। उस जिन्दगी में भी उसे बच्ची का सपना एक अर्थ देता रहा।

'पिक्चर पोस्टकार्ड' के परेश, निकी, सीडी तीन नवयुवक विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करके शहर दिल्ली में वक्त गुजार रहे हैं। काम है : अखबारनवीसी, आई० ए० एस० की तैयारी वगैरह। विद्यार्थी जीवन की आदत के अनुसार विश्वविद्यालय का चक्कर भी लगा आते हैं और खाली जिन्दगी को साथ-पढ़ी छात्राओं की बात-चीत से भरने की कोशिश करते हैं। निरुद्देश्यता

Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

अपने आलसी रूप में मौजूद है। थक कर रेस्तरां में बैठे हैं। बातचीत अचानक यह मोड़ ले लेती है—

"क्या तुम कभी कम्युनिस्ट रहे थे?"

"तुमसे किसने कहा?"

"सीढ़ी ने कहा था। लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। क्या यह सच है?"

"सीढ़ी ने क्या कहा था?"

"कुछ नहीं, मुझे सिर्फ उत्सुकता हुई थी। जानते हो, मेरा अभी तक किसी कम्युनिस्ट से वास्ता नहीं पड़ा। दूर से देखा है, लेकिन इतने पास से कभी नहीं जितने तुम हो। परेश, क्या तुम सचमुच कम्युनिस्ट रह चुके हो?"

"निकी, अगर तुम्हारी बीती हुई उम्र के पिछले पांच साल तुम्हें कोई लौटा दे तो तुम क्या करोगे?"

"मैं आर्मी में चला जाता।—परेश, मुझे एक बात का हमेशा दुःख रहेगा, पिछली लड़ाई में मैं बहुत छोटा था, वर्ना मैं जरूर जाता।"

बातचीत के इस आकस्मिक टुकड़े पर कहानी में कोई टिप्पणी नहीं है। बात बोलेगी, हम नहीं।

निर्मल के चरित्र कहीं-कहीं जीवन की व्यर्थता में भी अर्थ खोजने की कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं और निरुद्देश्य में भी एक उद्देश्य, एक आस्था की तलाश है। और इन तमाम अन्तर्विरोधों को अपने अंदर लिए वे एक भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि भविष्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

"सितम्बर की एक शाम।"

"सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा कर रही है कि वह उसे अर्थ दे, उसकी बाट जोह रही है—सांस रोके।"

"उसने आँखें उठायीं—सारी दुनिया सामने पड़ी थी, और उसकी उम्र सत्ताईस वर्ष की थी।"

निर्मल की यह 'प्रतीक्षा' इतनी विशद है कि प्रेम की कहानी में भी प्रेम-भावना का अतिक्रमण कर जाती है और अपने विस्तार में सम्पूर्ण मानव-नियति का प्रश्न बन जाती है। निर्मल की पैनी दृष्टि भलीभांति देखती है कि एक प्रश्न है जिसका सामना आज का युवक भी कर रहा है और युवती भी। इसकी काली छाया एक ओर बेरोजगारी की शक्ल में दिखाई पड़ती है तो दूसरी ओर प्रेम के निजी क्षेत्र को भी ग्रस रही है। जीवन का यही व्यापक परिवेश-बोध है जिसके कारण निर्मल की प्रेम कहानियां नितान्त प्रेम-कहानी न

होकर जीवन की अन्य समस्याओं से जुड़ जाती हैं। "एक पहेली-सी रहस्यमयता है जो क्षणिक होते हुए भी एक अनन्तता घेरे है।"

'परिन्दे' की नायिका लतिका राह चलते-चलते अचानक सिर के ऊपर पक्षियों का मेला उड़ता देखती है और अपने-आप सोचने लगती है:

"हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए नीचे के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब ये नीचे अजनबी, अनजान देश में उड़ जायेंगे—

क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं? यह डाक्टर मुखर्जी, मि० ह्यूबर्ट—लेकिन कहाँ के लिए? हम कहाँ जायेंगे?

"हम कहाँ जायेंगे?" यह सिर्फ एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं है, इनका, उनका, सबका प्रश्न है और मानव-नियति का यह विराट प्रश्न सारी कहानी पर छा जाता है।

प्रश्न की यह गूंज कुछ-कुछ वैसी ही है जैसी चेखव की प्रायः तमाम कहानियों में कहीं-न-कहीं गूंजती रहती है—हम क्या करें? गोया सारा जमाना एक साथ पूछ रहा है क्या करें? कहाँ जायें?

निर्मल इस प्रश्न के ठीक बाद धीमे स्वर में केवल इतना कहते हैं: "किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिला।"

निर्मल की यह खामोशी खास अपनी है। जिन्दगी अक्सर सामने ऐसे सवाल रखती है कि समझदार कुछ देर के लिए खामोश हो जाते हैं, जबकि ज्यादातर लोग ऐसे भी होते हैं जो खामोश नहीं रह सकते, उन्हें जवाब की जल्दी रहती है, सवाल चाहे जो हों।

कहानी इसके बाद भी चलती है। जिन्दगी इसके बाद भी है। एक जवाब मिल जाता है और नया सवाल खड़ा हो जाता है, प्रतीक्षा फिर भी है लेकिन नये उत्तर की।

इस विश्लेषण से स्पष्ट हो सकता है कि निर्मल की कहानियों के प्रभाव के पीछे जीवन की गहरी समझ और कला का कठोर अनुशासन है। बारीकियाँ दिखाई नहीं पड़ती हैं तो प्रभाव की तीव्रता के कारण अथवा कला के सघन रचाव के कारण। एक बार दिशा-संकेत मिल जाने पर निरर्थक प्रतीत होने-वाली छोटी-छोटी बातें भी सार्थक हो उठती हैं, चाहे कहानी हो चाहे जीवन। कठिनाई यह है कि यह दिशा-संकेत निर्मल की कहानी में बड़ी सहजता से आता है और प्रायः ऐसी अप्रत्याशित जगह, जहाँ देखने के हम अभ्यस्त नहीं है। क्या जीवन में भी सत्य इसी प्रकार अप्रत्याशित रूप से यहीं कहीं साधारण-से स्थल

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

में निहित नहीं होता ? कहा तो है निर्मल ने बिट्टो के लिए, लेकिन क्या यह कथन उनकी कहानी के लिए भी सच नहीं है ?

"आज सोचता हूँ, जाने से पहले बिट्टो कुछ ऐसा कहती, जिससे कोई विचित्र चमत्कार उद्घाटित हो पाता— लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह जिस तरह अचानक कमरे में घुस आई थी, वैसे ही सहज भाव से चली गई। उस समय मुझे ऐसा आभास हुआ था कि वह जाते-जाते दरवाजे पर क्षण भर ठिठकी थी, मानो कोई बात करने जा रही हो, जैसे कुछ शेष रह गया है— लेकिन शायद मेरा भ्रम था।"

जरूर भ्रम हो सकता है यदि कहानी के अन्तिम कथन के लिए ही कान लगे रहें। जिस तरह बिट्टो अपनी बात साहचर्य के ही क्षणों में अनायास कह चुकी थी, निर्मल की कहानी भी अभिप्रेत को अन्त से पहले ही कह जाती है। जीवन का सत्य यदि मृत्यु के समय ही मिलता हो तो ऐसे सत्यान्वेषियों को आंख मूंद कर केवल मृत्यु की प्रतीक्षा करनी चाहिए या जल्दी हो तो एक छलांग में आयु की सारी दूरी पार कर मृत्यु के तुरन्त समीप पहुँच जाना चाहिए।

ऐसे सत्यान्वेषण का एक दूसरा पहलू है सतह के चाकचिक्य को ही इदमित्थम् मान लेना। ऐसे भी पाठक हैं जिन्हें निर्मल की कहानियों के दृश्य-चित्र अच्छे लगते हैं, सूक्ष्म ऐन्द्रिय-बोध जगानेवाली छवियाँ पसंद है तथा अनुभूति-पूर्ण क्षणों का आलेख सुहाता है। शायद ऐसे ही लोगों के लिए 'डायरी का खेल' में निर्मल कहते हैं : "किन्तु बिट्टो का सत्य इन बातों, घटनाओं, स्मृतियों का जोड़ मात्र है—क्या उससे परे कुछ नहीं—कुछ भी नहीं ?"

कहानी का अभिप्रेत इन चित्रों को प्रस्तुत करते हुए भी उनका अतिक्रमण करता है। क्या पाठक से भी ऐसे अतिक्रमण की मांग नहीं की जा सकती ?

निर्मल ने अपनी रचना के द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि जो सबका अतिक्रमण करने की क्षमता रखता है वही सबको सजीव चित्रों में उरेहने की सिद्धि भी प्राप्त करता है। निर्मल ने स्थूल यथार्थ की सीमा पार करने की कोशिश की है, उन्होंने तात्कालिक वर्तमान का अतिक्रमण करना चाहा है, उन्होंने प्रचलित कहानी कला के दायरे से भी बाहर निकलने की कोशिश की है, यहाँ तक कि शब्द की अभेद्य दीवार को लाँघकर शब्द के पहले के 'मौन जगत्' में प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है और वहाँ जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रिय-बोध के द्वारा वस्तुओं के मूल रूप को पकड़ने का साहस दिखलाया है। इसी-लिए उनकी कहानी-कला में नवीनता है, भाषा में नव-जातक की-सी सहजता

और ताजगी है, वस्तुओं के चित्रों में पहले-पहल देखे जाने का अपरिचित टटकापन है। उनका गद्य 'शुद्ध गद्य' है—ठेठ वाचक शब्द, विशेषणहीन संज्ञाएँ, उपमा रहित पद तथा स्वतंत्र वाक्य। अलग-अलग करके देखने पर हर शब्द मामूली है, हर वाक्य साधारण है, लेकिन पूरा प्रभाव जबर्दस्त है। गद्य की रुखाई से भी, वे स्थितियों के अनुरोध से, कवित्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न कर ले जाते हैं। कवित्व लाने के लिए दूसरे कथाकारों की तरह अलग से किसी देशी या विदेशी भाषा की कविता को उद्धृत करने की जरूरत महसूस नहीं होती। छोटे-से-छोटे ब्यौरे पर भी उनकी पकड़ है और बड़ा-से-बड़ा सवाल भी पकड़ की सीमा के अन्दर है।

कहानियाँ फकत सात हैं, संग्रह अभी पहला है। जिसे हम 'नई कहानी' कहना चाहते हैं, संभवतः उसका भी पहला संग्रह यही है।

फिर भी अंत में एक बात कहने के लिए रह जाती है और बेहतर है कि उसे निर्मल के ही शब्दों में कहा जाय। आत्म-स्वीकृति 'तीसरा गवाह' के मि० रोहतगी की है—

"जब कभी सोचता हूँ, हर बार कोई नया नुक्ता उभर आता है, जिसकी तरफ पहले ध्यान नहीं गया था, या किसी बात का नया पहलू नजर आने लगता है जिसे पहले न देख सका था।"

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner